

चन्द्रप्रभचरितम् : एक परिशीलन

अमृतलाल शास्त्री

ग्रन्थ—परिचय

नाम—अष्टम तीर्थङ्कर चन्द्रप्रभ के शिक्षाप्रद जीवनवृत्त को लेकर लिखे गये प्रस्तुत महाकाव्य का नाम 'चन्द्रप्रभचरितम्' है, जैसा कि प्रतिज्ञा वाक्य (१. ९), पुष्पिका वाक्यों तथा 'श्रीजिनेन्दुप्रभस्येदं....' इत्यादि प्रशस्ति के अन्तर्गत पद्य (५) से स्पष्ट है।

प्राकृत, संस्कृत और अपभ्रंश भाषाओं में निबद्ध प्राचीन एवं अर्वाचीन काव्यों के अवलोकन से ज्ञात होता है कि उनके चरितान्त नाम रखने की परम्परा प्राचीन काल से ही चली आरही है। समुपलब्ध काव्यों में विमलसूरि (ई० १ शती) का 'पउमचरियं' प्राकृत काव्यों में, अश्वघोष (ई० १ शती) का 'बुद्धचरितम्' संस्कृत काव्यों में और स्वयम्भू कवि (ई. ७ शती) का 'पउमचरिउ' अपभ्रंश काव्यों में सर्वाधिक प्राचीन हैं। प्रस्तुत चरित महाकाव्य का नाम उक्त चरित काव्यों की परम्परा के अनुकूल है। सभी सर्गों के अन्तिम पद्यों में 'उदय' शब्द का सन्निवेश होने से यह काव्य 'उदयाङ्क' कहलाता है।

विषय—प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रतिपाद्य विषय भ० चन्द्रप्रभ का अत्यन्त शिक्षाप्रद जीवनवृत्त है, जो इसके अठारह सर्गों के इकतीस छन्दों में निबद्ध एक हजार छः सौ एकानवे पद्यों में समाप्त हुआ है। प्रारम्भ के पन्द्रह सर्गों में चरितनायक अष्टम तीर्थङ्कर भ. चन्द्रप्रभ के छः अतीत भवों का और अन्तके तीन सर्गों में वर्तमान भव का वर्णन किया गया है। सोलहवें सर्ग में गर्भकल्याणक, सत्रहवें में जन्म, तप और ज्ञान तथा अठारहवें में मोक्षकल्याणक वर्णित हैं। महाकाव्योचित प्रासङ्गिक वर्णन और अवान्तर कथाएँ भी यत्र-तत्र गुम्फित हैं।

चं. च. की कथावस्तु का संक्षिप्त सार

चं. च. में चरितनायक के राजा श्रीवर्मा, श्रीधरदेव, सम्राट् अजितसेन, अच्युतेन्द्र राजा पद्मनाभ, अहमिन्द्र और चन्द्रप्रभ^१—इन सात भवों का विस्तृत वर्णन है, जिसका संक्षिप्त सार इस प्रकार है—

१. यः श्रीवर्मनृपो बभूव विबुधः सौधर्मकल्पे तत—

स्तस्माच्चाजितसेनचक्रभृद्भूयश्चाच्युतेन्द्रस्ततः ।

यश्चाजायत पद्मनामनृपतियो वैजयन्तेश्वरो-

यः स्यात्तीर्थकरः स सप्तमभवे चन्द्रप्रभः पातु न ॥ कविप्रशस्ति, पद्य ९ ।

१. राजा श्रीवर्मा—पुष्करार्ध द्वीपवर्ती सुगन्धि^१ देश में श्रीपुर नामक पुर था। वहाँ राजा श्रीषेण निवास करते थे। उनकी पत्नी का नाम श्रीकान्ता^२ था। पुत्र के न होने से वह सदा चिन्तित^३ रहा करती थी। किसी दिन गेंद खेलते बच्चों को देखते ही उसके नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। उसकी सखी से इस बात को सुनकर राजा श्रीषेण उसे समझाते हुए कहते हैं—‘देवि, चिन्ता न करो। मैं शीघ्र ही विशिष्ट ज्ञानी मुनियों के दर्शन करने जाऊँगा, और उन्हींसे पुत्र न होने का कारण पूछूँगा। कुछ ही दिनों के पश्चात् वे अपने उद्यान में अचानक आकाश से उतरते हुए चारण ऋद्धिधारी मुनिराज अनन्त के दर्शन करते हैं। तत्पश्चात् प्रसन्न पाकर वे उनसे पूछते हैं—‘भगवन्, मुझे वैराग्य क्यों नहीं हो रहा?’ उन्होंने उत्तर दिया—‘राजन्, पुत्रप्राप्ति की इच्छा रहने से आपको वैराग्य नहीं हो रहा है। अब शीघ्र ही पुत्र होगा। अभी तक पुत्र न होने का कारण आपकी पत्नी का पिछले जन्म का अशुभ निदान है।’ घर पहुँचने पर वे अपनी पत्नी को पुत्र न होने की उक्त बात सुनाते हैं, जिससे वह प्रसन्न हो जाती है। दोनों धार्मिक कार्यों में संलग्न रहने लगते हैं। इतने में आष्टाह्निक पर्व आ जाता है। दोनों ने इस पर्व में आठ-आठ उपवास किये, आष्टाह्निक पूजा की और अभिषेक भी। कुछ ही दिनों के उपरान्त रानी गर्भ धारण करती है^४। धीरे-धीरे गर्भ के चिह्न^५ प्रकट होने लगे। नौ मास बीतने पर पुत्र रत्न की प्राप्ति होती है। उसका नाम श्रीवर्मा रखा गया। वयस्क होने पर राजा उसका विवाह कर के युवराज बना देते हैं। उल्कापात देखकर राजा श्रीषेण को वैराग्य हो जाता है। फलतः वे अपने पुत्र युवराज श्रीवर्मा को अपना राज्य सौंप कर श्रीप्रभ^६ मुनि से जिन दीक्षा लेकर घोर तप करते हैं, और फिर मुक्तिकन्या का वरण करते हैं। पिता के वियोग से श्रीवर्मा कुछ दिनों तक शोकाकुल रहते हैं। मन्त्रिमण्डल के समझाने-बुझाने पर वे दिग्विजय के लिए प्रस्थान करते हैं। उसमें सफल होकर वे घर आते हैं। शरत्कालीन मेघ को शीघ्र ही विलीन होते देख कर उन्हें वैराग्य हो जाता है फलतः वे अपने पुत्र श्रीकान्त^७ को अपना उत्तराधिकार देकर श्रीप्रभ मुनि के निकट जाकर दीक्षा ग्रहण कर लेते हैं, और फिर घोर तपश्चरण करते हैं।

२. श्रीधरदेव—घोर तपश्चरण के प्रभाव से श्रीवर्मा पहले स्वर्ग में श्रीधरदेव होते हैं। वहाँ उन्हें दो सागरोपम आयु प्राप्त होती है। उनका अभ्युदय अन्य देवों से कहीं अच्छा था। देवियाँ उन्हें स्थायी उत्सव की भांति देखती रहीं।

१. पुराणसारसंग्रह (७६. २) में देश का नाम गन्धिल लिखा है।
२. पुराणसारसंग्रह (७६. ३) में रानी का नाम श्रीमती दिया गया।
३. उत्तर पुराण (५४. ४४) में राजा का चिन्तित होना वर्णित है।
४. उ. पु. (५४.५१) में गर्भ धारण करने से पहले चार स्वप्न देखने का उल्लेख है, और पुराण सा. (७६.५) में पांच स्वप्न देखने का।
५. पुराण सा. में गर्भचिह्नों की चर्चा नहीं है।
६. उ. पु. (५४.७३) में मुनि का नाम श्रीपद्म और पुराण सा. (७८.१९) में श्रीधर मिलता है।
७. पुराण सा. (७८.१९) में श्रीकान्त के स्थान में श्रीधर है।

३. **सम्राट अजितसेन**—घातकीखण्ड द्वीप के अलका नामक देश में कोशला^१ नगरी है। वहाँ राजा अजितजय और उनकी रानी अजितसेना^२ निवास करते हैं। उक्त श्रीधर देव इन्हीं का पुत्र अजितसेन^३ होता है। वयस्क होते ही उसे युवराज बना दिया जाता है। अजितजय के देखते-देखते उसके सभा भवन से युवराज अजितसेन को चण्डरुचि नामक कुख्यात असुर पिछले जन्म के वैर के कारण उठा ले जाता है। राजा व्याकुल होकर मूर्च्छित हो जाता है। इसी बीच तपोभूषण नामक एक मुनिराज पधारते हैं, और वे यह कहकर वापिस चले जाते हैं कि 'कुछ दिनों के बाद युवराज अजितसेन सकुशल घर आ जायगा'^४। उधर वह असुर उसे बहुत ऊँचाई से एक सरोवर में गिरा कर आगे चला जाता है। मगर-मच्छों से जूझता हुआ वह किसी तरह किनारे पर पहुँच जाता है। वहाँ से वह ज्यों ही परुषा नाम की अटवी में प्रवेश करता है त्यों ही एक भयङ्कर आदमी से द्वन्द्व छिड़ जाता है। पराजित होने पर वह अपने असली रूप को प्रकट कर देता है, और कहता है—'युवराज, मैं मनुष्य नहीं, देव हूँ। मेरा नाम हिरण्य है। मैं आपका मित्र हूँ, किन्तु आपके पौरुष के परीक्षण के लिए मैंने ऐसा व्यवहार किया है, क्षमा कीजिए। पिछले तीसरे जन्म में आप सुगन्धि देश के नरेश थे। आपकी राजधानी में एक दिन शशी ने संधे लगा कर सूर्य के सारे धन को चुरा लिया था। पता लगने पर आपने शशी को कड़ा दण्ड दिया, जिससे वह मर गया और फिर वह चण्डरुचि असुर हुआ। इसी वैर के कारण उसने आपका अपहरण किया। वरामद धन उसके स्वामी को वापिस दिलवा दिया। युवराज, वही शशी मरने के बाद हिरण्य नामक देव हुआ, जो इस समय आपसे बात कर रहा है।'^५

तत्पश्चात् युवराज विपुलपुर की ओर प्रस्थान करता है। वहाँ के राजाका नाम जयवर्मा, रानीका नाम जयश्री और उनकी कन्या का नाम शशिप्रभा था। महेन्द्र नामक एक राजा जयवर्मा से उसकी कन्या की मंगिनी करता है, पर किसी निमित्त ज्ञानी से उसे अल्पायुष्क जानकर वह स्वीकृति न दे सका। उससे क्रुद्ध होकर महेन्द्र जयवर्मा को युद्ध के लिए ललकारता है। युवराज जयवर्मा का साथ देता है, और युद्ध में महेन्द्र को मार डालता है। इससे प्रभावित होकर जयवर्मा युवराज के साथ अपनी कन्या शशिप्रभा का विवाह करना चाहता है। इतने में विजयार्थ की दक्षिण श्रेणी के आदित्यपुर का राजा धरणीध्वज जयवर्मा को सन्देश भेजता है कि वह अपनी कन्या का विवाह मेरे (धरणीध्वज) की साथ करे। इसके लिए जयवर्मा तैयार नहीं होता। फलतः दोनों में भयङ्कर संग्राम छिड़ जाता है। पूर्वचर्चित हिरण्यदेव के सहयोग से युवराज अजितसेन धरणीध्वज को भी युद्धभूमि में स्वर्गवासी बना देता है। इसके उपरान्त राजा जयवर्मा शुभ मुहूर्त में युवराज अजितसेन के साथ अपनी कन्या का विवाह कर देता है। फिर उसके साथ युवराज

१. उ. पु. (५४.८७) में और पुराण सा. (८०.२२) में नगरी का नाम अयोध्या दिया है।

२. पुराण सा. (८०.२३) में रानी का नाम श्रीदत्ता मिलता है।

३. श्रीधर देव के गर्भ में आने से पहले उ. पु. (५४.८९) में रानी के आठ शुभ स्वप्न देखने का उल्लेख है।

४. इस घटना का उल्लेख उ. पु. तथा पुराण सा. में नहीं है।

५. उ. पु. तथा पुराण सा. में इस घटना का उल्लेख नहीं है।

अपने नगर की शोभा बढ़ाता है। वहाँ अजितजय उसे अपना उत्तराधिकार सौंप देते हैं। चक्रवर्ती होने से वह चौदह रत्नों एवं नौ निधियों का स्वामित्व प्राप्त करता है। अजितजय तीर्थङ्कर स्वयंप्रभ के निकट जिन दीक्षा ले लेता है, और वहीं पर सम्राट् अजितसेन के हृदय में सच्ची श्रद्धा (सम्यग्दर्शन) जाग उठती है। दिग्विजय में पूर्ण सफलता प्राप्त करके सम्राट् राज्य का संचालन करने लगता है। किसी दिन एक उन्मत्त हाथी ने एक मनुष्य की हत्या कर डाली। इस दुःखद घटना^१ को देख कर सम्राट् को वैराग्य हो जाता है, फलतः वह अपने पुत्र जितशत्रु को अपना आराधिका सौंप कर शिवंकर^२ उद्यान में गुणप्रभ मुनि के निकट जिन दीक्षा ग्रहण कर लेता है, और फिर घोर तपश्चरण करता है।

४. अच्युतेन्द्र—घोर तपश्चरण करने से वह सम्राट् अच्युतेन्द्र होता है। बाईस सागरोपम आयु की अन्तिम अवधि तक वह दिव्य सुख का अनुभव करता है।

५. राजा पद्मनाभ—आयु समाप्त होने पर अच्युतेन्द्र अच्युत स्वर्ग से चयकर घातकीखण्ड द्वीपवर्ती मङ्गलावती देश के रत्नसंचयपुर में राजा कनकप्रभ के^३ यहाँ उनकी प्रधान रानी सुवर्णमाला की^४ कुक्षि से पद्मनाभ नामक पुत्र होता है। किसी दिन एक बूढ़े बैल को दलदल में घंस जाने से मरते देखकर कनकप्रभ को वैराग्य हो जाता है^५। फलतः वह अपने पुत्र पद्मनाभ को अपना राज्य देकर श्रीधरमुनि से जिनदीक्षा ले लेता है, और दुर्धर तप करता है। पिता के विरह से वह कुछ दिन दुःखी रहता है। फिर मन्त्रियों के प्रयत्न से वह अपने राज्य का परिपालन करने लगता है। कुछ काल बाद अपने पुत्र को युवराज बनाकर वह अपनी रानी सोमप्रभा के^६ साथ आनन्दमय जीवन बीताने लगता है। किसी दिन माली के द्वारा श्रीधरमुनि के पधारने के शुभ समाचार सुनकर पद्मनाभ उनके दर्शनों के लिए 'मनोहर' उद्यान में जाता है। दर्शन करने के उपरान्त वह उनके आगे अपनी तत्त्वजिज्ञासा प्रकट करता है। उत्तर में वे तत्त्वोपप्लव आदि दर्शनों के मन्तव्यों की विस्तृत मीमांसा करते हुए सात तत्त्वों के स्वरूप का निरूपण करते हैं। उसे सुनकर राजा पद्मनाभ का संशय दूर हो जाता है। इसके पश्चात् पद्मनाभ के पूछने पर वे उसके पिछले चार भवों का विस्तृत वृत्तान्त सुनाते हैं। इस वृत्तान्त की सच्चाई पर कैसे विश्वास हो? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए मुनिराज ने कहा—'राजन्, आज से दसवें दिन एक मदान्ध हाथी अपने झुण्ड से बिलुडकर आपके नगर में प्रवेश करेगा। उसे देखकर आपको मेरे कथन पर विश्वास हो जायगा'। इसके उपरान्त मुनिराज से व्रत ग्रहण कर वह अपनी राजधानी में लौट आता है। ठीक दसवें दिन एक मदान्ध हाथी सहसा राजधानी में घुसकर उपद्रव करने लगता है। पद्मनाभ उसे अपने

१. उ. पु. एवं पुराण सा. में इस घटना का भी उल्लेख नहीं है।

२. उ. पु. (५४. १२२) में उद्यान का नाम 'मनोहर' लिखा है।

३. पुराण सा. (८२.३२) में कनकाम नाम दिया है।

४. पुराण सा. (८२.३२) में रानी का नाम कनकमाला लिखा है।

५. उ. पु. तथा पुराण सा. में इस घटना की चर्चा नहीं है।

६. उ. पु. (५४.१४१) में पद्मनाभ की अनेक रानियाँ होने का संकेत मिलता है।

वश में कर लेता है, और उसपर सवार होकर वनक्रीडा के लिए चल देता है। इसी निमित्त से उस हाथी का नाम 'वनकेलि' नाम पड़ जाता है। क्रीडा के पश्चात् पद्मनाभ उसे अपनी गजशाला में बंधवा देता है^१। राजा पृथ्वीपाल इस हाथी को अपना बतलाकर हथियाना चाहता है। पद्मनाभ के इनकार करने पर दोनों में युद्ध छिड़ जाता है। युद्ध में पृथिवीपाल मारा जाता है। इसके कटे सिर को देखकर पद्मनाभ को वैराग्य हो जाता है, फलतः वह श्रीधरमुनि से जिनदीक्षा लेकर सिंहनिष्क्रीडित आदि व्रतों व तेरह प्रकार के चारित्र का परिपालन करता हुआ घोर तप करता है। कुछ ही समय में वह द्वादशाङ्ग श्रुत का ज्ञान प्राप्त करता है, और सोलहकारण भावनाओं के प्रभाव से तीर्थङ्कर प्रकृति का बन्ध कर लेता है।

६. वैजयन्तेश्वर—आयु के अन्त में संन्यासपूर्वक भौतिक शरीर को छोड़कर पद्मनाम वैजयन्त नामक अनुत्तर विमान में अहमिन्द्र होते हैं, और तेतीस सागरोपम आयु की अन्तिम अवधि तक वहाँ दिव्य सुख का अनुभव करते हैं।

७. तीर्थङ्कर चन्द्रप्रभ—आयु की समाप्ति होने पर वैजयन्तेश्वर पूर्व देश^२ की चन्द्रपुरी^३ में अष्टम तीर्थङ्कर होते हैं।

माता—पिता—इनकी माता का नाम लक्ष्मणा^४ और पिता का महासेन था। इक्ष्वाकुवंशी महासेन अनेकानेक विशिष्ट गुणों की दृष्टि से अनुपम रहे। दिग्विजय के समय इन्होंने अङ्ग, आन्ध्र, उद्द, कर्णाटक, कलिङ्ग, कश्मीर, कीर, चेदी, टक्क, द्रमिल, पाञ्चाल, पारसीक, मलय, लाट और सिन्धु आदि अनेक देशों के नरेशों को अपने अधीन किया था।

रत्नवृष्टि—दिग्विजय के पश्चात् चन्द्रपुरी में राजा महासेन के राजमहल में चन्द्रप्रभ के गर्भावतरण के छः मास पहले से उनके जन्म दिन तक प्रति दिन साढ़े तीन करोड़ रत्नों की वृष्टि होती रही।

गर्भशोधन आदि—रत्नवृष्टि को देख कर महासेन को आश्चर्य होता है, पर कुछ ही समय के पश्चात् इन्द्र की आज्ञा से आठ दिक्कुमारियाँ उनके यहाँ महारानी लक्ष्मणा की सेवा के लिए उपस्थित होती हैं। उनके साथ हुए वार्तालाप से उनका आश्चर्य दूर हो जाता है। महासेन से अनुमति लेकर वे उनके अन्तःपुर में प्रवेश करती हैं, और लक्ष्मणा के गर्भशोधन आदि कार्यों में संलग्न हो जाती हैं।

१. उ. पु. और पुराण सा. में इस घटना का तथा इसके बाद होनेवाले युद्ध का उल्लेख नहीं है।

२. वाराणसी से आसाम तक का पूर्वी भारत 'पूर्व देश' के नाम से प्रख्यात रहा। उ. पु., पुराण सा. त्रिषष्टि शलाका पुरुष और त्रिषष्टि स्मृति में इस देश का उल्लेख नहीं है।

३. त्रिषष्टि शलाका पुरुष (२९६. १३) में इस नगरी का नाम 'चन्द्रानना', उ. पु. (५४. १६३) में 'चन्द्रपुर', पुराण सा. (८२. ३९) में चन्द्रपुर, तिलोयपण्णत्ती (४. ५३३) में 'चन्द्रपुर' और हरिवंश (६०. १८९) में 'चन्द्रपुरी' लिखा है। सम्प्रति इसका नाम 'चन्द्रवटी' 'चन्द्रौटी' या 'चंद्रौटी' है। यह वाराणसी से १८ मील दूर गङ्गा के बायें तटपर है। यहाँ दि. व श्वे. सम्प्रदाय के दो अलग-अलग जैन मन्दिर हैं।

४. तिलोयपण्णत्ती (४. ५३३) में माता का नाम 'लक्ष्मीमती' लिखा है।

शुभ स्वप्न—महारानी लक्ष्मणा सुखपूर्वक सो रही थीं, इतने में उन्हें रात्रि के अन्तिम प्रहर में सोलह शुभ स्वप्न हुए। प्रभात होते ही वे अपने पति के पास पहुँचती हैं।

स्वप्नफल—पत्नी के मुख से क्रमशः सभी स्वप्नों को सुनकर महासेन ने उनका शुभ फल बतलाया, जिसे सुनकर उन्हें अपार हर्ष हुआ।

गर्भावतरण—आयु के समाप्त होते ही उक्त वैजयन्तेश्वर अपने विमान से चयकर प्रशस्त ['चैत्र कृष्णा पञ्चमी के'] दिन महारानी लक्ष्मणा के गर्भ में अवतरण करते हैं।

गर्भकल्याणक महोत्सव—इसके पश्चात् इन्द्र महाराज महासेन के राजमहल में पहुँच कर गर्भकल्याणक महोत्सव मनाते हैं। माता के चरणों की अर्चना करके वे वहाँ से वापिस चले जाते हैं, पर श्री, ही और धृति देवियाँ वहीं रह कर उन (माता) की सेवा-शुश्रूषा करती हैं।

जन्म—पौष कृष्णा एकादशी^१ के दिन लक्ष्मणा सुन्दर पुत्र—चन्द्रप्रभ को जन्म देती है। इस शुभ वेला में दिशाएँ स्वच्छ हो जाती हैं; आकाश निर्मल हो जाता है; सुगन्धित मन्द वायु का संचार होता है; दिव्य पुष्पों की वृष्टि होती है; कल्पवासी देवों के यहां मणिघण्टिकाएँ, ज्यौतिष्क देवों के यहां सिंहनाद, भवनवासी देवों के यहां शङ्ख और व्यन्तर देवों के यहां दुन्दुभि बाजे स्वयमेव बजने लगते हैं—इन हेतुओं से तथा अपने आसन के कम्पन से इन्द्र चन्द्रप्रभ के जन्म को जानकर देवों के साथ चन्द्रपुरी की ओर प्रस्थान करते हैं।

अभिषेक—इन्द्राणी माता के निकट मायामयी शिशु को सुलाकर वास्तविक शिशु को राजमहल से बाहर ले आती है। सौधमेंन्द्र शिशु को दोनों हाथों में लेकर ऐरावत पर सवार होता है, और सभी देवों के साथ सुमेरु पर्वत की ओर प्रस्थान करता है। वहां पाण्डुक शिला पर शिशु को बैठाकर देवों के द्वारा लाये गये क्षीरसागर के जल से अभिषेक करता है, और विविध अलङ्कारों से अलङ्कृत कर के उनका 'चन्द्रप्रभ' नाम रख देता है। इसके उपरान्त सौधमेंन्द्र अन्य इन्द्रों के साथ उन (चन्द्रप्रभ) की स्तुति^३ करता है, और फिर उन्हें माता के पास पहुँचा कर महासेन से अनुमति लेकर वापिस चला जाता है।

बाल्यकाल—शिशु अपनी अमृतलिप्त अङ्गुलियों को चूस कर ही तृप्त रहता है, उसे माँके दूध की विशेष लिप्सा नहीं होती। चन्द्रकलाओं की भाँति शिशु का विकास होने लगता है। धीरे-धीरे वह देवकुमारों के साथ गेंद आदि लेकर क्रीडा करने योग्य हो जाता है। इसके पश्चात् वह तैरना, हाथी-घोड़े पर सवारी करना आदि विविध कलाओं में प्रवीण हो जाता है।

१. यह मिति उ. पु. (५४. १६६) के आधार पर दी है, चं. च. में इस मिति का उल्लेख नहीं है।

२. यही मिति उ. पु., हरिवंश एवं तिलोयप. में अङ्कित है, त्रिषष्टिशलाकापु. (२९७.३२) में पौष कृष्णा द्वादशी लिखी है, पर पुराणसा. (८४.४४) में केवल अनुराधा योग का ही उल्लेख मिलता है।

३. त्रिषष्टिशलाका पुरुष में भी स्तुति का उल्लेख है, पर उ. पु. (५४, १७४) में आनन्दनाटक का उल्लेख मिलता है, न कि स्तुति का।

विवाह संस्कार—व्यस्क होते ही राजा महासेन उनका विवाहसंस्कार करते हैं, जिसमें सभी राजे महाराजे सम्मिलित होते हैं।

राज्यसंचालन—पिताजी के आग्रह पर चन्द्रप्रभ राज्य का संचालन स्वीकार करते हैं। इनके राज्य में प्रजा सुखी रही, किसीका अकाल मरण नहीं हुआ, प्राकृतिक प्रकोप नहीं हुआ तथा स्वचक्र या परचक्र से कभी कोई बाधा नहीं हुई। दिन रात के समय को आठ भागों में विभक्त करके वे दिनचर्या के अनुसार चल कर समस्त प्रजा को नयमार्ग पर चलने की शिक्षा देते रहे। विरोधी राजे-महाराजे भी उपहार ले-लेकर उनके पास आते और उन्हें नम्रता पूर्वक प्रणाम करते रहे। इन्द्र के आदेश पर अनेक देवाइनाएँ प्रतिदिन उनके निकट गीत-नृत्य करती रहीं। अपनी कमला आदि अनेक पत्नियों के साथ वे चिरकाल तक आनन्द पूर्वक रहे।

वैराग्य—किसी दिन एक वृद्ध लाठी टेकता हुआ उनकी सभा में जाकर दर्दनाक शब्दों में कहता है—‘ भगवन्, एक निमित्त ज्ञानी ने मुझे मृत्यु की सूचना दी है। मेरी रक्षा कीजिए, आप मृत्युञ्जय हैं, अतः इस कार्य में सक्षम हैं’। इतना कह कर वह अदृश्य हो जाता है। चन्द्रप्रभ समझ जाते हैं कि वृद्ध के वेष में देव आया था, जिसका नाम था धर्मरुचि। इसी निमित्त से वे विरक्त हो जाते हैं^१। इतने में ही लौकान्तिक देव आ जाते हैं, और ‘साधु’ ‘साधु’ कह कर उनके वैराग्य की प्रशंसा करते हैं। तदनंतर वे शीघ्रही दीक्षा लेने का निश्चय करते हैं, और अपने पुत्र वरचन्द्र को अपना राज्य सौंप देते हैं।

तप—तपश्चात् इन्द्र और देव चन्द्रप्रभ को ‘त्रिमला’ नामकी शिविका में बैठाकर सकलर्तु^२ वन में ले जाते हैं, जहाँ वे [पौष कृष्णा एकादशी के^३ दिन] दो उपवासों का नियम लेकर सिद्धों को नमन

१. उ. पु. (५४.२१४) में और पुराणसा. (८६.५७) में क्रमशः, निष्क्रमण के अवसर पर अपने पुत्र वरचन्द्र व रवितेज को चन्द्रप्रभ के द्वारा उत्तराधिकार सौंपने का उल्लेख है, पर दोनों में ऐसे श्लोक दृष्टि-गोचर नहीं होते, जिनमें उनके विवाह की स्पष्ट चर्चा हो। चं. च. (१७.६०) में चन्द्रप्रभ की अनेक पत्नियों का उल्लेख है जो त्रिषष्टिशलाका पु. (२९८.५५) में भी पाया जाता है।
२. चन्द्रप्रभ के वैराग्य का कारण तिलोयप. (४.६१०) में अष्टुव वस्तु का और उ. पु. (५४.२०३) तथा त्रिषष्टिस्मृति. (२८.९) में दर्पण में मुख की विकृति का अवलोकन लिखा है। त्रिषष्टिशलाका पु. एवं पुराणसा. में वैराग्य के कारण का उल्लेख नहीं है।
३. हरिवंश (७२२.२२२) में शिविका नाम ‘मनोहरा’, त्रिषष्टिशलाका पु. (२९८.६१) में ‘मनोरमा’ और पुराण सा. (८६.५८) में ‘सुविशाला’ लिखा है। तिलोयप. (४.६५१) में वन का नाम ‘सर्वार्थ’ उ. पु. (५४.२१६) में ‘सर्वर्तुक’ त्रिषष्टिशलाका पु. (२९८.६२) एवं पुराणसा. (८६.५८) में ‘सहस्रात्र’ लिखा है।
४. चं. च. में मिति नहीं दी, अतः हरिवंश (७२३.२३३) के आधार पर यह मिति दी गई है। उ. पु. (५४.२१६) में भी यही मिति है, पर कृष्ण पक्ष का उल्लेख नहीं है। त्रिषष्टिशलाका पु. (२९८.६४) में पौष कृष्णा त्रयोदशी मिति दी है। पुराणसा. (८६.६०) में केवल अनुराधा नक्षत्र का ही उल्लेख है।

करते हुए एक हजार राजाओं के साथ दीक्षा लेकर तप करते हैं। दीक्षा लेते समय वे पांच दृढ मुष्टियों से केश लुञ्चन करते हैं। देवेन्द्र और देव मिलकर तप कल्याणक का उत्सव मनाते हैं, और उन केशों को मणिमय पात्र में रखकर क्षीरसागर में प्रवाहित करते हैं।

पारणा—नलिनपुर^१ में राजा सोमदत्त^२ के यहाँ वे पारणा करते हैं। इसी अवसर पर वहाँ पांच आश्चर्य प्रकट होते हैं।

कैवल्य प्राप्ति—घोर तप करके वे शुक्लध्यान का अवलम्बन लेकर [फाल्गुन कृष्णा सप्तमी^३ के दिन] कैवल्य पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति करते हैं।

समवसरण—कैवल्य प्राप्ति के पश्चात् इन्द्र का आदेश पाकर कुबेर साढ़े आठ योजन^४ के विस्तार में वर्तुलाकार समवसरण का निर्माण करता है। इसके मध्य गन्धकुटी में एक सिंहासन पर भगवान् चन्द्रप्रभ विराजमान हुए और चारों ओर बारह प्रकोष्ठों में गणधर आदि।

दिव्यदेशना—तदनन्तर गणधर (मुख्य शिष्य) के प्रश्न का उत्तर देते हुए भ. चन्द्रप्रभ ने जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष—इन सात तत्त्वों का निरूपण ऐसी भाषा में किया, जिसे सभी श्रोता आसानी से समझते रहे।

गणधरादिकों की संख्या—दस सहज, दस कैवल्यज्ञानकृत और चौदह देवरचित अतिशयों तथा आठ प्रातिहार्यों से विभूषित भ. चन्द्रप्रभ के समवसरण में तेरानवै गणधर, दो हजार^५ कुशाप्रबुद्धि पूर्वधारी, दो लाख चारसौ^६ उपाध्याय, आठ हजार^७ अवधिज्ञानी, दस हजार^८ केवली, चौदह हजार^९

१. हरिवंश (७२४.२४०) और त्रिषष्टिशलाका पु. (२९८.६६) में पुर का नाम 'पञ्चखण्ड' तथा पुराणसा. (८६.६२) में 'नलिनखण्ड' दिया है।
२. हरिवंश (७२४.२४६) और पुराणसा. (८६.६२) में राजा का नाम 'सोमदेव' लिखा मिलता है।
३. यह मिति उ. पु. (५४.२२४) के आधार पर दी गयी है। चं. च. में भ. चन्द्रप्रभ के जन्म और मोक्ष कल्याणकों की मितियाँ अङ्कित हैं, शेष तीन कल्याणकों की नहीं।
४. त्रिषष्टिशलाका पु. (२९८.७५) में चं. के समवसरण का विस्तार एक योजन लिखा है।
५. तिलोय प. (४.११२०) में पूर्वधारियों की संख्या चार हजार दी है।
६. तिलोय प. (४.११२०) में उपाध्यायों की संख्या दो लाख दस हजार चारसौ दी है।
७. तिलोय प. (४.११२१) में अवभिज्ञानियों की संख्या दो हजार लिखी है।
८. तिलोय प. (४.११२१) में केवलियों की संख्या अठारह हजार दी है।
९. तिलोय प. (४.११२१) में विक्रियाङ्गद्विधारियों की संख्या छः सौ दी है और हरिवंश (७३६.३८६) में दस हजार चारसौ।

विक्रियाक्रद्धिधारी साधु, आठ हजार मनःपर्ययज्ञानी साधु, सात हजार छः सौ^१ वादी, एक लाख अस्सी हजार^२ आर्थिकाएँ, तीन लाख सम्यग्यदृष्टि श्रावक और पांच लाख^३ व्रतविभूषित श्राविकाएँ रहीं ।

आर्यक्षेत्र में यत्र—तत्र धर्माभूत की वर्षा करते हुए भ. चन्द्रप्रभ सम्मेदाचल (शिखरजी) के शिखर पर पहुँचते हैं । भाद्रपद शुक्ला सप्तमी^४ के दिन अवशिष्ट चार अघातिया कर्मों के नष्ट करके दस लाख पूर्व प्रमाण आयु के समाप्त होते ही वे मुक्ति प्राप्त करते हैं ।

चं. च. में रस योजना—चं. च. में शान्त, शृङ्गार, वीर, रौद्र, बीभत्स, करुण, अद्भुत और वासल्य रस प्रवाहित है । इनमें शान्त अङ्गी है और शेष अङ्ग ।

चं. च. में अलङ्कार योजना—चं. च. में छेकानुप्रास, वृत्त्यनुप्रास, श्रुत्यनुप्रास, अन्त्यानुप्रास, चित्र, काकुवक्तिक्रि और यमक आदि शब्दालङ्कारों के अतिरिक्त पूर्णोपमा, मालोपमा, लुप्तोपमा, उपमेयोपमा, प्रतीप, रूपक, परम्परितरूपक, परिणाम, भ्रान्तिमान्, अपहनुति, कैतवापहनुति, उत्प्रेक्षा, अतिशय, अन्तदीपक, तुल्ययोगिता, प्रतिवस्तूपमा, दृष्टान्त, निदर्शना, व्यतिरेक, सहोक्ति, समासोक्ति, परिकर, श्लेष, अप्रस्तुत प्रशंसा, पर्यायोक्त, विरोधामास, विभावना, अन्योन्य, कारणमाला, एकावली, परिवृत्ति, परिसंख्या, समुच्चय, अर्थापत्ति, काव्यलिङ्ग, अर्थान्तरन्यास, तद्गुण, लोकोक्ति, स्वभावोक्ति, उदात्त, अनुमान, रसवत्, प्रेय, ऊर्जस्वित, समाहित, भावोदय, संसृष्टि, और सङ्कर आदि शब्दालङ्कारों का एकाधिक बार प्रयोग हुआ है ।

चं. च. की समीक्षा—महाकवि वीरनन्दि को भ. चन्द्रप्रभ का जो संक्षिप्त जीवनवृत्त प्राचीन स्रोतों से समुपलब्ध हुआ, उसे उन्होंने ने अपने चं. च. में खूब ही पल्लवित किया है ! चं. के जीवनवृत्त को लेकर बनायी गयीं जितनी भी दि. श्वे. कृतियाँ सम्प्रति समुपलब्ध हैं, उनमें वीरनन्दि की प्रस्तुत कृति ही सर्वाङ्गपूर्ण है । इसकी तुलना वे उ. पु. गत चं. च. भी संक्षिप्त—सा प्रतीत होता है, जो उपलब्ध अन्य चन्द्रप्रभचरितों से, जिनमें हेमचन्द्रकृत चं. च. भी शामिल है, विस्तृत है । अतः केवल कथानक के आधार पर ही विचार किया जाए, तो भी यह मानना पड़ेगा कि वीरनन्दि को सब से अधिक सफलता प्राप्त हुई है । सरसता की दृष्टि से तो इनकी कृति का महत्त्व और भी अधिक बढ़ गया है ।

वीरनन्दि का चं. च. अपनी विशेषताओं के कारण संस्कृत महाकाव्यों में विशिष्ट स्थान रखता है । कोमल पदावली, अर्थसौष्टव, विस्मयजनक कल्पनाएँ, अद्भुत घटनाएँ, विशिष्ट संवाद, वैदर्भी रीति,

१. तिलोय प. (४.११२१) में वादियों की संख्या सात हजार दी है ।
२. तिलोय प. (४.११६९) तथा पुराण सा. (८८.७५) में आर्थिकाओं की संख्या चार लाख अस्सी हजार लिखी है ।
३. पुराण सा. (८८.७७) में श्राविकाओं की संख्या चार लाख एकानवै हजार दी है । त्रिपष्टिशालाका पु. में कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य श्री हेमचन्द्र के द्वारा दी गई संख्याएँ प्रायः इन संख्याओं से भिन्न हैं ।
४. उ. पु. (५४.२७१) में चन्द्रप्रभ के मोक्षकल्याणक की मिति फाल्गुन शुक्ला सप्तमी दी गयी है, पुराण सा. (९०.७९) में मिति नहीं दी गयी, केवल ज्येष्ठा नक्षत्र का उल्लेख किया गया है ।

ओज, प्रसाद तथा माधुर्यगुण, विविध छन्दों (कुल मिलाकर इकतीस) और अलङ्कारों की योजना, रस का अविच्छिन्न प्रवाह, प्राञ्जल संस्कृत, महाकाव्योचित प्रासङ्गिक वर्णन और मानवोचित शिक्षा आदि की दृष्टि से प्रस्तुत कृति अत्यन्त श्लाघ्य है ।

प्रस्तुत कृति में वीरनन्दि की साहित्यिक, दार्शनिक और सैद्धान्तिक विद्वत्ता की त्रिवेणी प्रवाहित है । साहित्यिक वेणी (धारा) अथ से इति तक अविच्छिन्न गति से बही है । दार्शनिक धारा का सङ्गम दूसरे सर्ग में हुआ है, और सैद्धान्तिक धारा सरस्वती की भांति कहीं दृश्य तो कहीं अदृश्य होकर भी अन्तिम सर्ग में विशिष्ट रूप धारण करती है । पर कवि की अप्रतिम प्रतिभा ने साहित्यिक धारा को कहीं पर भी क्षीण नहीं होने दिया । फलतः दार्शनिक और सैद्धान्तिक धाराओं में भी पूर्ण सरसता अनुस्यूत है ।

अश्वघोष और उनके उत्तरवर्ती कालिदास की भांति वीरनन्दि को अर्थचित्र से अनुरक्ति है । यों इन तीनों महाकवियों की कृतियों में शब्दचित्र के भी दर्शन होते हैं, पर भारवि और माघ की कृतियों की भांति नहीं, जिनमें शब्दचित्र आवश्यकता की सीमा से बाहर चले गये हैं ।

चं. च. में वर्णित चन्द्रप्रभ का जीवनवृत्त अतीत और वर्तमान की दृष्टि से दो भागों में विभक्त किया जा सकता है । प्रारम्भ के पन्द्रह सर्गों में अतीत का और अन्तके तीन सर्गों में वर्तमान का वर्णन है । इसलिए अतीत के वर्णन से वर्तमान का वर्णन कुछ दब-सा गया है । चन्द्रप्रभ की प्रधान पत्नी का नाम कमलप्रभा है । नायिका होने के नाते इनका विस्तृत वर्णन होना चाहिए था, पर केवल एक (१७. ६०) पद्य में ही इनके नाम मात्र का उल्लेख किया गया है । इसी तरह इनके पुत्र वरचन्द्र की भी केवल एक (१७. ७४) पद्य में ही नाम मात्र की चर्चा की गयी है । दोनों के प्रति बरती गयी यह उपेक्षा खटकने वाली है । दूसरे सर्ग में की गयी दार्शनिक चर्चा अधिक लम्बी है । इसके कारण कथा का प्रवाह कुछ अवरुद्ध-सा हो गया है । इतना होते हुए भी कवित्व की दृष्टि से प्रस्तुत महाकाव्य प्रशंसनीय है क्लिष्टता और दूरान्त्रय के न होने से इसके पद्य पढ़ते ही समझ में आ जाते हैं । इसकी सरलता रघुवंश और बुद्धचरित से भी कहीं अधिक है ।

संस्कृत व्याख्या और पञ्जिका—विक्रम की ११ वीं शती के प्रारम्भ में निर्मित प्रस्तुत महाकाव्य पर मुनिचन्द्र (वि. सं. १५६०) की संस्कृत व्याख्या और गुणनन्दि (वि. सं. १५९७) की पञ्जिका उपलब्ध हैं । पं. जयचन्द्र छावड़ाने (जन्म वि. सं. १७९५) इसके दूसरे सर्ग के ६८ दार्शनिक पद्यों पर पुरानी हिन्दी में वचनिका लिखी थी, जो उल्लब्ध है ।

इस तरह प्रस्तुत महाकाव्य के विषय में संक्षिप्त परिशीलन प्रस्तुत किया गया है ।